प्राचीन भारत में पर्यावरणीय चेतना का विकास–एक ऐतिहासिक अध्ययन

*धनेश प्रसाद उनियाल

सारांश

प्राचीन भारतीय की पर्यावरणीय चेतना काफी व्यापक थी, जिसमे प्रकृति के समस्त तत्वों का महत्व एवं प्रभाव, मानव एवं प्रकृति के अन्तर्सम्बन्धों का अस्तित्व एवं सहअस्तित्व, वसुधैव कुटुम्बकम, सर्वे भवन्तु सुखिनः, स्वयं से पहले प्रकृति का उदात भाव, समुचित प्रशासनिक प्रबन्ध का अद्भुत संगम है। वर्तमान समय की सतत विकास की अवधारणा, कोविड जैसी आपदाओं के समय संसाधनों का समुचित प्रयोग, जैव विविधता के संरक्षण एवं संवर्धन के विविध प्रयास प्राचीन भारतीय पर्यावरणीय विकासधारा मे मौजूद है। इतिहास की चक्रीय प्रकृति के सिद्वान्त के आधार पर पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन के सन्दर्भ में प्राचीन भारतीय की पर्यावरणीय चेतना की पुनरावृति हुई है, क्योंकि भारत की प्राचीन पर्यावरणीय परम्परा सार्वभौमिकता के भाव एवं व्यवहार पर आधारित है। वर्तमान परिदृश्य में ग्लोबल वार्मिंग, जैव विविधता में ह्रास, जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियां, मानव का प्रकृति के साथ बदलते सम्बन्धों एवं व्यहार का परिणाम है। परिवर्तन प्रकृति का शास्वत नियम है, किन्तु यह परिवर्तन सन्तुलित रूप में हो तभी कल्याणकारी सिद्व होता है।

मूल शब्द– ऋग्वेद, उपनिषद, स्मृतियां, श्रीमदभगवदगीता, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, पर्यावरणीय चेतना, विचार , व्यवहार।

प्रस्तावना

प्राचीन भारत की पर्यावरणीय चेतना विचार एवं व्यवहार में समत्व के भाव से युक्त है। इसमें प्रकृति के प्रत्येक तत्व के संरक्षण एवं संवर्धन का अद्भुत संगम है। वसुधैव कुटम्बकम के सार्वभौम भाव एंव विचार इसकी व्यापक अवधारणा को स्पष्ट करती है। पारिस्थितिक आध्यात्मिकता, प्रकृति के विविध तत्वों के मानवीकरण एवं दैवीयकरण ने मानव एवं प्रकृति के अन्तर्सम्बन्धों को सुदृढ कर पर्यावरण संरक्षण की भावना को प्रबल किया तथा पारिस्थितिक संन्तुलन कायम करने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की। यह सम्बन्ध वर्तमान तक भारतीय पर्यावरणीय परम्परा के रूप में उपस्थित है। प्राचीन पर्यावरणीय चिंतन एवं व्यवहार समग्रता को प्रस्तुत करता है, जिसमें प्रकृति के प्रत्येक तत्व का अस्तित्व, महत्व, संरक्षण एवं संवर्धन व्यापक स्वरूप में उपस्थित है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य प्राचीन भारत की पर्यावरणीय चेतना के सन्दर्भ में मानव प्रकृति के परस्पर सम्बन्धों, पर्यावरणीय प्रबन्धन की विभिन पद्वतियों की ऐतिहासिक विकासधारा के विविध पक्षों का निरूपण करना, ताकि वर्तमान पर्यावरणीय चुनौतियो के समाधान की समझ व्यवहारिक रूप में विकसित हो सके।

प्रारम्भिक पर्यावरणीय चेतना का विकास–

सिन्धु सभ्यता का पर्यावरणीय चिंतन एवं प्रणाली

भारत की प्राचीन सभ्यताओं के उदय एवं विस्तार के साथ ही पर्यावरणीय समझ व्यापक रूप में देखने को मिलती है। सिन्धु सभ्यता में प्रकृति के साथ सम्बन्ध धार्मिक एवं वैज्ञानिकता के रूप में दृष्टिगोचर होता है। धरती,

वृक्ष, पशुपति कुबड वाला सांड की पूजा पारिस्थितिकी सन्तुलन में धार्मिक स्वरूप एवं जल प्रबन्धन, नगर नियोजन, स्वछता जैसे आयामों के विकास में वैज्ञानिक तर्क एवं सोच का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

वैदिक संस्कृति का चिंतन एवं व्यवहार

कालखंड में यह चिंतन और प्रबल हुआ, पृथ्वी जल वायु अग्नि तत्व के चिंतन से आगे अन्तरिक्ष तक केन्द्रित हुआ। वैदिक साहित्य में प्राकृतिक चिंतन की व्याख्या काफी विस्तृत है। वेदों उपनिषदों में पंचतत्वों पर केन्द्रित चिंतन ने सार्वभौमिक स्वरूप को प्रस्तुत किया। मानवीयकरण एवं दैवीयकरण की अवधारणा ने मानव और प्रकृति के अन्तर्सम्बन्धो को काफी घनिष्ठ किया। उपनिषदों मे पांच प्रमुख तत्वों का वर्णन है। '**इमानीं च पंचमहाभूतानि–पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींषि**' (ऐतरेय उपनिषद 3.3)।

- **पृथ्वी एवं आकाश तत्व**–ऋग्वेद, अथर्ववेद मे पृथ्वी को मातृ स्वरूप एवं आकाश मानव के अन्तर्सम्बन्धों का स्वरूप मानवीय सम्बन्धों के रूप मे अभिव्यक्त किया गया है। **'द्यौर्मे पिता जनिता, नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्' (ऋग्वेद 1.164.33)** ऋग्वेद मे पृथ्वी को मातृरूप, दौवापृथिवी मानव– पृथ्वी आकाश के सम्बन्ध मानवीय सम्बन्धों के भाव के रूप में जीवंत स्वरूप मे स्थापित किया गया। आकाश को पितृ रूप में अभिव्यक्त किया गया है। द्यौ की उपासना आकाश के देवता के रूप मे भी होती थी। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में वर्णित '**माता भूमि पुत्रोहं पृथिव्याः**' (अथर्ववेद 12.1.12) का भाव पर्यावरण के प्रति संवेदना को अभिव्यक्त करता है। महा उपनिषद 6.71 में वर्णित '**वसुधैव कुटुम्बकम**' की अवधारणा ने सम्पूर्ण पृथ्वी को परिवार के रूप में वर्णित किया है। इस भाव में पर्यावरण के प्रत्येक घटक के समावेश एवं उनके अन्तर्सम्बन्धों के रूप में पर्यावरण चिंतन पद्वति की व्यापकता स्पष्ट होती है। प्रकृति एवं मानव के गहरे अन्तर्सम्बन्धों को अभिव्यक्त करते हैं। **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु ,मा कश्चिद दुख भाग भवेत'** (बृहदारण्यक उपनिषद 1.4.14) का भाव सन्तुलित पर्यावरण, संरक्षित पर्यावरण की उच्चस्थिति को स्पष्ट करता है।

- **जल, वायु, अग्नि तत्व–** जल तत्व के सन्दर्भ में इन्द्र, नदियों की उपासना जल तत्व के महत्व को स्पष्ट करता है। इन्द्र की उपासना सूखा, अतिवृष्टि से मुक्ति हेतु प्रकृति सन्तुलन के चिंतन का द्योतक है। नदियों के प्रति मातृस्वरूप भाव उसके महत्व एवं संरक्षण को अभिव्यक्त करता है। वेदों में जल को शुद्व रखने पर बल दिया गया है। **इं न आपो धन्वन्याः शमु स्नत्वनूप्याः। इं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः' (अथर्ववेद 1.7.29)** अर्थात मरूस्थल का जल, अनूप जल, कुओं का जल और घडें से भरा हुआ जल–ये सभी हमारे लिए कल्याणकाारी हो। यह मंत्र उस समय के जल स्रोतो की पूर्णता एवं उसके सन्तुलन एवं प्रभाव को व्यक्त करता है।

वैदिक काल में वायु शुद्विकरण का कारक, सृष्टि संचालक तत्व के रूप में वर्णित है। '**वात आ वातु भेषजं**'ऋग्वेद10.186.1 वायु अमूल्य औषधि एवं प्राणवायु है। इस भाव में महत्व को उल्लिखित किया गया है।

'आ जुहोत हा हविषा मर्जयध्वम्, नि होतारं गृहपति दधिध्वम्' (सामवेद 63) अग्नि मे शोधक द्रव्यों की आहुति से वायुमण्डल को शुद्व करो। यह अग्नि वनस्पतियों एवं वायु के अन्तर्सम्बन्धों के रूप में प्राकृतिक सन्तुलन की व्यवहारिकता का उदाहरण है। अग्नि वायुमण्डल से समस्त दूषक तत्वों का उन्मूलन करती है। यह विचार अग्नि के महत्व को रेखांकित करता है। यज्ञ पद्वति के द्वारा यह व्यवहार मे लाया गया ।

- **लोक संस्कृति एवं अन्य तत्व–**

मानव संस्कृति एवं परम्परा उनके परिवेश एवं पर्यावरण पर निर्भर रहती है। वैदिक संस्कृतियों की लोक

परम्परा, जीवन शैली में सोम, अरण्यानी, वृक्षों, जीवों की उपासना वन, वनस्पतियों, जीव जन्तुओं के संरक्षण संवर्धन को पुष्ट करती थी। तुलसी, बरगद, पीपल, बेल आदि वृक्षों की उपासना, सम्मिलित था। गाय सबसे पवित्र पशु के रूप मे वर्णित है, वृक्षों को काटना एवं गाय की हत्या करना अनैतिक कर्म समझा जाता था। पूषन देवता द्वारा पालतू एवं जंगली जानवरों को सुरक्षित रखा जाता है। उपरोक्त तत्वों के महत्व की समझ होने के कारण ही वृक्षों एवं जीवों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए उपासना एवं नैतिक प्रतिबंन्ध निश्चित ही उचित कदम प्रतीत होता है।

ऊँ द्यौ शान्तिऽरन्तरिक्षं शान्ति पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्तयः शान्तिर्विश्वदेवाः शान्तिर्बह्मशान्ति सर्व शान्तिः (शुक्ल यजुर्वेद 36.17) का भाव प्रकृति के प्रत्येक तत्व का चिंतन प्रकृति संरक्षण एवं वैश्विक सन्दर्भ मे अभिव्यक्त है, जो प्रकृति के प्रत्येक तत्व के सन्तुलन एवं प्रभाव को इंगित करता है। **'यते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु। मां ते मर्म विमृग्वरी या ते हुदयमर्पितम्' (**अथर्ववेद 12.35)। पर्यावरण प्रकृति संरक्षण की व्यापक चेतना को प्रस्तुत करते **है। 'यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्मा इमाः पंच कृष्टयः, भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तुवर्षमेदसे' (अथर्ववेद 12.42)** तत्कालीन पर्यावरण सन्तुलन एवं खुशहाली का व्यक्त करता है तथा प्रकृति का सम्मान करता है।

भगवदगीता मे स्वयं भगवान कृष्ण कहते हैं– **'मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतुनां कसुमाकर'** (श्रीमद्भगवद्गीता 10. 35), जो प्रकृति चक्र की ओर संकेत करता है। **'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां'** (श्रीमदभगवद्गीता 10.26) पीपल वृक्ष में स्वयं के स्वरूप का मानवीयकरण एवं दैवीकरण भारतीय परम्परा को उद्घाटित करता है। प्रकृति ऋतु चक्र एवं पीपल में स्वयं को प्रतिबिम्बित करना पर्यावरण के तत्वों के प्रति सम्मान, संरक्षण का संदेश देना है।

'यज्ञेन प्यायिता देवा, वृष्टयुत्सर्गेण मानवाः आप्यायन वै कुर्वन्ति, यज्ञाः कल्याणहेतव' (ऋग्वेद 10.90.16) सम्बन्ध–कारण एवं प्रभाव द्वारा प्रकृति के संरक्षण का सन्देश यज्ञ क्रिया के द्वारा प्रदान किया गया है।

बौद्व एवं जैन परम्परा में पर्यावरणीय चिंतन

बौद्व एवं जैन दर्शनों ने पूर्ण व्यवहारिक स्वरूप में स्थापित किया, बुद्व एवं महावीर ने अपनी शिक्षा एवं सिदान्तों से प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में इन्द्रिय निग्रह स्थापित कर व्यक्तिगत जीवन यात्रा के साथ प्रकृति के तत्वों के साथ लोकव्यवहार के रूप में स्थापित किया। बौद्व दर्शन मे कर्म के सिद्वान्त की व्याख्या अष्टांगिक मार्ग की सम्यकता, शीलों, प्रतीत्यसमुत्पाद जैसे सिद्वान्तों पर की गई है। उपासक/उपासिका सदस्यों की पांच शपथों में से एक किसी जीव को हानि न पहुंचाना[10] पर्यावरणीय चिंतन को स्पष्ट किया जा सकता है। अहिंसा, अपरिग्रह ने पर्यावरण सन्तुलन मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अहिसा के कारण जीव–जन्तुओं के संरक्षण को बल मिला तो अपरिग्रह से प्राकृतिक संसाधनो का समुचित उपयोग को। बौद्व दर्शन की पर्यावरणीय चेतना का प्रभाव काफी व्यापक था, जीव–जन्तुओं एवं वृक्षों के संरक्षण एवं संवर्धन में मौर्य शासक अशोक का दृष्टिकोण एवं व्यवहार मे बौद्व धर्म के सिद्वान्तों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जैन दर्शन में भी इसी तरह का विचार देखने को मिलता है। अहिंसा और अपरिग्रह की सीमाएं जैन धर्म में और ज्यादा बढ जाती है, जिसने जीव जन्तुओं, वन, वनस्पतियों का संरक्षण को बल मिला।

मौर्यकाल में पर्यावरणीय प्रबन्धन

मौर्यकाल में प्राकृतिक सन्तुलन कौटिल्य के अर्थशास्त्र एवं अशोक के अभिलेखों में वर्णित विचारों एवं क्रियाविधि मे व्यापक रूप से देखने को मिलता है। मौर्य साम्राज्य उत्कृष्ट शासन प्रबन्ध के लिए विख्यात है तथा प्राकृतिक प्रबन्धन के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में जलतत्व एवं भूमि तत्व को विशेष महत्व प्राप्त था। सीताध्यक्ष, आटविक, आकाराध्यक्ष, कुप्याध्यक्ष, गोअध्यक्ष, वीविताध्यक्ष आदि अध्यक्षों की नियुक्ति राज्यहित में पर्यावरण संरक्षण के इन्हीं तत्वों को ध्यान मे रख कर भी की गई। कौटिल्य के अनुसार राज्य

की आय के स्रोतों मे वन एवं खनिज राज्य के सुदृढीकरण के लिए आवश्यक तत्व है। **समाहर्तादुर्ग राष्ट्रखनिसेतु वनं वणिकपथं चावेक्षेत**(अर्थशास्त्र 24.1), **तेषां नदी पर्वतदुर्ग रक्षस्थानं** (अर्थशास्त्र 2.20.3) इससे यह स्पष्ट होता है कि पर्यावरण के तत्व वन एवं खनिज राज्य के लिए कितने महत्वपूर्ण हैं तथा इनका संरक्षण राज्य की प्रगति के लिए आवश्यक है। राजा को सर्वप्रथम उपस्थित वनों को सरंक्षित करना चाहिए और नवीन वनों को प्रवर्तित करना चाहिए। मौर्य काल मे दो प्रकार के वन हस्तिवन एवं द्रव्यवन राज्य के नियंत्रण में थे। **हस्तिघातुं हन्यु** (अर्थशास्त्र 2. 20.9) जीव–जन्तुओं एवं वनस्पति को हानि पहुचांने पर पूर्ण प्रतिबन्ध था। वन्यजीव जन्तुओं हत्या, एवं वृक्षों को काटने पर कठोर दंड, अर्थदंड दिया जाता था। बाग–बगीचों के फल–फूलों, पतों, टहनियों, छोटी शाखाओं को काटने पर दण्ड का विधान है। तत्वों के उचित प्रबन्धन से ही सशक्त साम्राज्य का निर्माण हो सका। अशोक 5वें शिलालेख में पशु –पक्षियों की हत्या का निषेध, बधियाकरण पर्यावरण के संरक्षण संवर्धन को स्पष्ट करता है। पशुओं की चिकित्सा व्यवस्था प्रकृति के जीव –जन्तुओं के संरक्षण का भाव अभिव्यक्त है। **अनारम्भो प्राणानाम्** (प्राणियों की हत्या न करना), **अविंहिंसा भूतानाम** प्राणियों को क्षति न पहुंचाना एवं अपव्ययता और अपभाण्डता (अल्प संचय) जैसे गुणों को व्यवहार में समावेशित करना पर्यावरण संतुलन एवं संरक्षण के लिए आवश्यक तत्व के रूप में दृष्टिगोचर होता है। अशोक के सातवें अभिलेख मे वर्णित वट वृक्षारोपण, आम्रवाटिकाएं, कुएं खुदवाना, वनस्पतियों के संवर्धन एवं जल प्रबन्धन का उपयुक्त उदाहरण है। दोपायों, चौपायों, पक्षियों, जलचरों पर अनेक प्रकार के उपकार मेरे द्वारा किए गए। यहां तक की उन्हें जीवनदान भी दिया गया। अशोक के इस वैचारिक एवं व्यवहारिक कार्य का उद्देश्य लोगों में धर्म के ऐसे आचरणों को विकसित करना है, जैसा कि अशोक स्वयं कहा है। अशोक की धम्म की व्याख्या के सम्बन्ध में यह कथन जलमंडल और स्थलमंडल के विभिन्न जीव–जन्तुओं के संरक्षण को बढावा देता है। इस प्रकार अशोक जीवों के संरक्षण एवं वृक्षारोपण जैसी क्रियाओं को धर्म का कार्य मानता है तथा जनमानस को इस कार्य में सहयोग प्रदान करने की अपेक्षा की गई है। इस प्रकार मौर्य काल में पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन महत्वपूर्ण प्रशासनिक एवं नैतिक विषय था।

मौर्योतर एवं गुप्तकाल मे पयार्वरणीय चेतना–

स्मृतिग्रंथ प्राचीन भारत में लोकव्यवहार की सीमाओं का निर्धारण करती है। पर्यावरण सम्बन्धी लोकव्यवहार की सीमाएं एवं व्यवस्था स्मृति ग्रंथों मे देखने को मिलती है। यह कर्तव्य एवं धर्म के रूप में स्पष्ट किया गया है। **'वनस्तीनां सर्वेषामुपभोगो यथायथा, तथातथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा'** (मनुस्मृति 8.285) वृक्षों को बिना कारण एवं विक्रय करने वाले व्यक्ति को दण्ड का विधान किया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में प्रकृति की समृद्वि एवं संरक्षण प्रदर्शित है, इसमें प्रकृति के विभिन्न तत्वों के संरक्षण हेतु कठोर दण्डों का विधान है।

कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम, ऋतुसंहार, मेघदूत ग्रंथों में मानव–प्रकृति के सम्बन्ध एवं परस्पर प्रभावो की अभिव्यंजना है। **'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति, जलं युष्मास्वपीतेषु या, नादते प्रियमण्डनाऽपि, भवतां स्नेहेन या पल्लव'** (अभिज्ञानशाकुन्तलम 4.9) यह भाव **स्वयं से पहले प्रकृति** का संदेश प्रदान करती है, जो प्रकृति के प्रति निस्वार्थता एवं आदर के भाव प्रकट करता है। कालिदास के मेघदूतम में प्रकृति को मानवीय संवेदनाओं से जोडकर मानव के हर्ष, विषाद, प्रेम–विरह की भावना पर विभिन्न ऋतुओं की क्रिया के प्रभाव को स्पष्ट करता है। **'धूमज्योतिः सलिलमरूतां, सन्निपातः क्व मेघः। संदेशार्था क्व पटुकरणै प्राणिभिः प्रापणीयाः'** (पूर्वमेघ 5) प्रकृति के जड चेतन के परस्पर सम्बन्धों का विवेचन करता है। प्राचीन भारत में पर्यावरणीय चिंतन विचार, भाव और व्यवहार काफी व्यापक है।

निष्कर्ष

इस शोध पत्र का निष्कर्ष यह है कि पंच तत्वों एवं उनमें समाहित तत्वों के समुचित प्रयोग एवं प्रबन्धन से

प्राचीन भारत के विभिन्न कालखंण्डों में जैव विविधता एवं पारिस्थिति सन्तुलन कायम रहा। प्रकृति के मानवीय एवं दैवीयकरण ने पर्यावरण एवं मानव–प्रकृति अन्तर्सम्बन्धों को काफी सुदृढ़ किया। अहिंसा, अपरिग्रह, प्रतीत्यसमुत्पाद जैसे व्यवहार एवं सिद्वान्तों ने मानव की अतिउपभोगवादी प्रवृति को नियंत्रित कर पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्धन में महत्वूपर्ण भूमिका निभाई। प्रशासनिक प्रबन्धन एवं नीतियों के सन्दर्भ में उपभोग–नियन्त्रण एवं संरक्षण के प्रभावी क्रियान्वयन ने पारिस्थितिक संन्तुलन स्थापित किया। स्वयं से पहले प्रकृति के भाव पर्यावरण संरक्षण के लिए अति आवश्यक है। प्राचीन भारत की पर्यावरणीय चेतना के सार के रूप राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक–धार्मिक क्षेत्रों में विचार एवं व्यवहार में उपभोग–नियन्त्रण एवं संरक्षण में सन्तुलन अति आवश्यक है, तभी वर्तमान पर्यावरणीय चुनौतियों का स्थायी समाधान किया जा सकता है।

***असिस्टेंट प्रोफेसर**
फू0सि0 बि0 राजकीय महाविद्यालय
लम्बगांव टि0ग0 उतराखण्ड

सन्दर्भ सूची–

1. ऋग्वेद
2. यजुर्वेद
3. सामवेद
4. अथर्ववेद
5. महा उपनिषद
6. बृहदारण्यक उपनिषद
7. श्रीमदभगवदगीता गीताप्रेस गोरखपुर
8. शास्त्री, गंगा प्रसाद, कौटिल्य अर्थशास्त्र, वैदिक प्रेस शामली यूपी0
9. श्रीवास्तव,के0सी0, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति यूनाईटेड बुक डिपो
10. झा एवं श्रीमाली, द्विजेन्द्रनाथ,कृष्णमोहन, प्राचीन भारत का इतिहास हिन्दी माध्यम क्रियान्वयन नई दिल्ली
11. सिंह उपिन्दर, प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास पियर्सन इण्डिया ऐजुकेशन सर्वि0प्रा0लि0 नोएडा
12. मनुस्मृति
13. अभिज्ञान शाकुन्तलम
14. मेघदूत